ब्राह्मी से देवनागरी

रमेश चन्द्र

संसार की हर लिपि के प्रयोग की अपनी कोई परंपरा होती है, जो उसके विकास की कहानी बताती है। देवनागरी लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ और इसके प्रयोग की परंपरा एक हजार वर्षों से अधिक पुरानी है, जिसकी एक झलक यहाँ प्रस्तुत करते हैं। यह निर्विवादित है कि वैदिक काल (1500 ई.पू से 800 ई.पू., जिसमें संस्कृत भाषा का प्रयोग होता था) की लिपि ब्राह्मी थी, जिससे यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मी लिपि वैदिक काल जितनी पुरानी है और सिंधु घाटी की सभ्यता वैदिककाल की ठीक पूर्ववर्ती होने के कारण इसका संबंध किसी न किसी प्रकार सिंधु घाटी की लिपि से भी था।

वैदिक काल की ब्राह्मी में 13 स्वर और 39 व्यंजन थे। स्वरों में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ ध्वनियों के प्रतीक 9 मूल स्वर थे तथा ए, ऐ, ओ, औ ध्वनियों के प्रतीक चार संयुक्त स्वर थे। 39 व्यंजनों में क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, ळ, ळह, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, इॅ(यू), र, ल उॅ(व), श, ष, स, ह, विसर्ग (:), जिह्वामूलीय अथवा उपध्मानीय (ˣ) अनुनासिक शामिल थे। परंतु इन सबके लेखिमों के रूप अलग थे। वैदिककालीन ब्राह्मी लिपि के लेखिम निम्नानुसार थे:

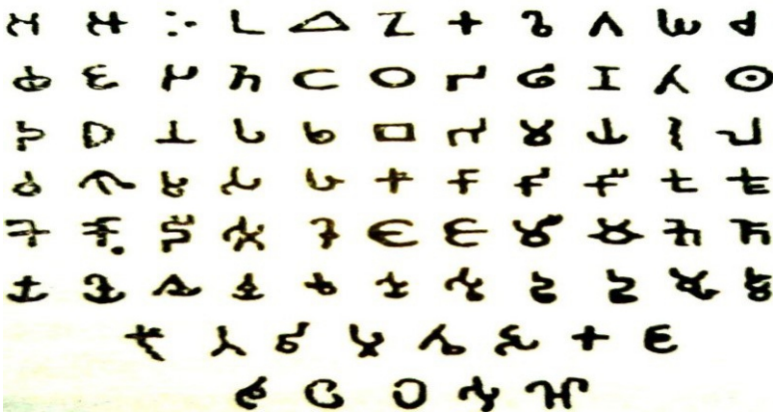

वैदिक काल में वेदों में प्लुत स्वर को प्रकट करने के लिए ह्रस्व या दीर्घ स्वर के बाद '3' का प्रयोग किया जाता था, जिसे दीर्घ कंप कहा जाता था। 'ओ3म्' शब्द में इसका प्रयोग आज भी होता है। वैदिककालीन ब्राह्मी में स्वर, अनुस्वार और कुछ अन्य लेखिम निम्नानुसार होते थे

चिह्न	नाम	चिह्न	नाम
..	वाक्यांत (वाक्य के अंत में प्रयुक्त) उदात्त	[illegible]	यजुर्वेदीय अनुस्वार 1
(-)	अनुदात्त	[illegible]	यजुर्वेदीय अनुस्वार 2
(॒)	कथकीय अनुदात्त	[illegible]	यजुर्वेदीय अनुस्वार 3
(')	स्वरित	[illegible]	यजुर्वेदीय अनुस्वार 4
(,)	मैत्रायणीय स्वरित	[illegible]	यजुर्वेदीय अनुस्वार 5
(")	दीर्घ स्वरित	[illegible]	यजुर्वेदीय अनुस्वार 6
[illegible]	अथर्ववेदीय जात्य स्वरित	[illegible]	यजुर्वेदीय अनुस्वार 7
[illegible]	शुक्ल यजुर्वेदीय जात्य स्वरित	[illegible]	शुक्ल यजुर्वेदीय अनुस्वार
[illegible]	मैत्रायणीय जात्य स्वरित	[illegible]	कृष्ण यजुर्वेदीय अनुस्वार
[illegible]	तैत्तिरीय यजुर्वेद से इतर जात्य स्वरित	[illegible]	कृष्ण यजुर्वेदीय दीर्घ अनुस्वार
१	सामवेदी स्वर 1		**अन्य करैक्टर**
२	सामवेदी स्वर 2	×	जिह्वामूलीय
३	सामवेदी स्वर 3	[illegible]	पुष्पिका अथवा पूर्णकलश
क	सामवेदी स्वर 4	[illegible]	विसर्ग 1
र	सामवेदी स्वर 5	[illegible]	विसर्ग 2
उ	सामवेदी स्वर 6	[illegible]	विसर्ग 3
[illegible]	कंप	[illegible]	विसर्ग 4
१	ह्रस्व कंप	[illegible]	विसर्ग 5
३	दीर्घ कंप	°	संक्षेपण चिह्न
		ॐ	ओ३म
		ऽ	अवग्रह

इस लिपि का विश्लेषण किया जाए तो यह देखने में आता है कि उस समय की ब्राह्मी लिपि में साधारण स्वर और मिश्रित स्वर दोनों थे, जिनका उच्चारण उनके उच्चारण-स्थान के आधार पर किया जाता था। व्यंजन भी उच्चारण-स्थान के आधार पर वर्गीकृत थे। आधुनिक देवनागरी की भाँति इसके भी क, च, ट, त, प वर्ग थे, जो कंठ, तालु, मूर्धा, दंत और ओष्ठ वर्गों में विभाजित थे। प्रत्येक वर्ग में पाँच व्यंजन होते थे। अंतिम व्यंजन नासिक्य होता था। इसी प्रकार य, र, ल, व, श, ष, स, ह की ध्वनियों के चिह्न भी थे। यह एक ध्वन्यात्मक लिपि थी, जिसमें हर ध्वनि के लिए अलग लिपि-चिह्न तथा हर लिपि-चिह्न के लिए अलग ध्वनि होती थी। वर्गीकरण का यही आधार सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं का भी आधार बना हुआ है।

समय के साथ वैदिक काल की ब्राह्मी लिपि की कुछ ध्वनियों का प्रयोग बंद हो जाने अथवा उनके प्रयोग का स्वरूप बदल जाने के कारण कुछ ध्वनि—प्रतीक विलुप्त हो गए अथवा अपने नए रूप में अंगीकार हुए। इसी प्रकार लौकिक संस्कृत में भी ध्वनियों में कुछ परिवर्तन हो गए थे। ए, ओ की ध्वनियाँ मूल स्वर बन गई थीं और इनका उच्चारण क्रमश: अर्धविवृत अग्र तथा अर्धविवृत पश्च होने लगा। संयुक्त स्वर ऐ, औ की ध्वनियों का उच्चारण अइ, अउ होने लगा। ऋ, ॠ तथा लृ स्वर होने के बावजूद इनका उच्चारण-क्रम क्रमश: रि, री और लि होता था। ळ और ळह की प्रतीक-ध्वनियाँ निकल गईं। इनके अतिरिक्त ह्रस्व ऍ, ऑ की ध्वनियाँ और इनके प्रतीक भी विकसित हो गए थे। अ और आ की ध्वनियाँ विवृत हो गई थीं। ऐ, औ, श, ष ध्वनियों का प्रयोग बंद हो गया था, परंतु बाद में इनका प्रयोग पुन: होने लगा था।

उस समय की ब्राह्मी लिपि वैज्ञानिक होते हुए भी उसमें लिखित संस्कृत मानकीकृत नहीं थी। बाद में 800 ई. पू. से 500 ई.पू. तक लौकिक संस्कृत अपभ्रंश का प्रचलन रहा, जो मानकीकृत भाषा थी। 500 ई.पू. से 1 ई. पू. तक ब्राह्मी लिपि में पालि तथा शौरसेनी (शौरसेनी प्राकृत का प्राचीन रूप) भाषाएँ लिखी जाती थीं। पालि और शौरसेनी प्राकृत मध्य देशीय भाषाएँ थीं। पालि पूर्वी प्रभाव लिए हुए एक प्रकार से आधुनिक हिंदी का प्राचीन रूप ही थी। सन् 1 ई. से 500 ई. तक ब्राह्मी लिपि में प्राकृत (शौरसेनी प्राकृत) लिखी गई।

अशोक के काल (273 ई.पू से 232 ई.पू) में ब्राह्मी लिपि में शौरसेनी प्राकृत लिखी जाती थी। ब्राह्मी लिपि के लेख अशोककालीन भारत में पाए गए हैं। अशोक के काल में ब्राह्मी लिपि का स्वरूप निम्न प्रकार था:

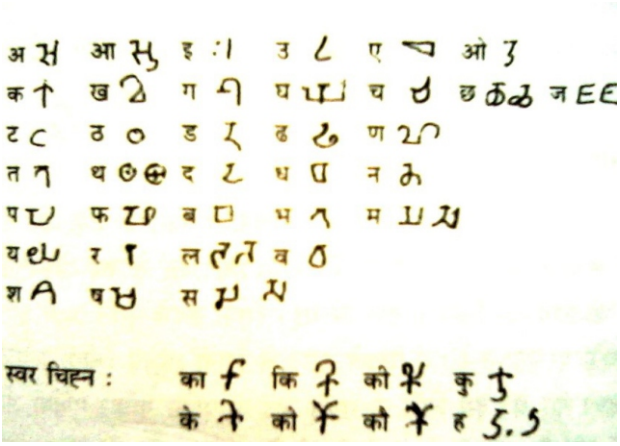

ब्राह्मी का यह रूप आधुनिक देवनागरी के निकट आना शुरू हो गया था, क्योंकि इसके कुछ करैक्टर यथा अ स्वर, उ, ए, ओ और औ स्वरों की मात्राएँ, क, ट, ढ, त, प, म, ष आधुनिक देवनागरी को रूपायित करते हैं। अशोक काल में ब्राह्मी के साथ-साथ खरोष्ठी लिपि का भी प्रचलन था, परंतु देवनागरी के निकट ब्राह्मी ही थी। ब्राह्मी लिपि भी आधुनिक देवनागरी की तरह बाईं से दाईं ओर ही लिखी जाती थी।

जार्ज ब्यूलर का मत है कि ब्राह्मी लिपि में तीसरी शताब्दी ई.पू. से ही 46 मूल करैक्टर थे। इसमें ऐ, ओ, अं, अ: और ङ की उपस्थिति से पता चलता है कि इसे संस्कृत की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया गया था। ब्राह्मी लिपि के पुराने रूपों की जानकारी

एरण (मध्य प्रदेश) के चौथी शताब्दी ई.पू. के सिक्कों, अशोक के शिलालेखों, भट्टिप्रोलु की द्राविड़ी (ब्राह्मी का ही एक भेद), मौर्य वंश के शासक दशरथ (200 ई.पू.) के अभिलेखों, भारहुत (मध्य प्रदेश) के तोरण के अभिलेखों (पहली शताब्दी ई.पू.) की शुंग लिपि तथा हाथीगुंफा(उदयगिरि, ओडिशा) की कलिंग लिपि से भी मिलती है। उस समय अ और आ ध्वनियों के उच्चारण एक ही स्थान से होते थे। न, ल, स के ध्वनि-प्रतीक दंत्य थे तथा ळ, ळ्, ट, ठ, ड, ढ, ण, ष मूर्धन्य थे। अनुस्वार शुद्ध नासिक्य ध्वनि था अर्थात् संसार का उच्चारण सअंसार की तरह होता था।

बाद में ब्राह्मी लिपि में अनेक परिवर्तन हुए, जिससे प्रादेशिक लिपियों के रूप बने। ब्राह्मी के बाद कुषाणकालीन लिपि, गुप्त लिपि और वाकाटक लिपियाँ अस्तित्व में आईं, जिनके रूप निम्नानुसार थे:

कुषाणकालीन लिपि (40-176 ई.)

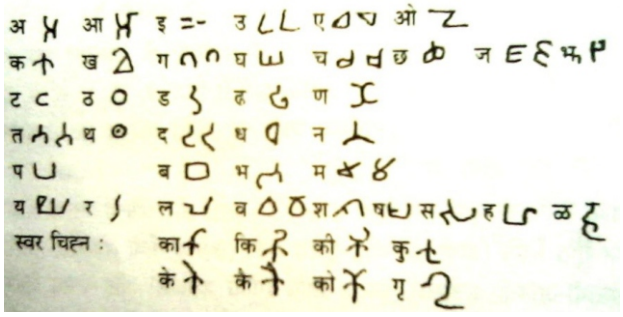

(6) वाकाटक लिपि (280-445 ई.)

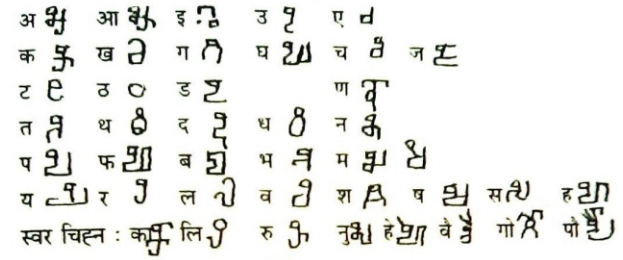

(7) गुप्त लिपि (320-540 ई.)

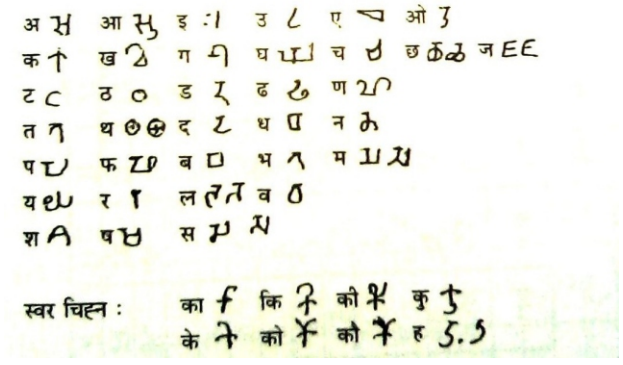

उपरोक्त लिपि चिह्नों से देखने में आता है कि कुषाणकालीन लिपि में अ, त, न, ए, ऐ और ऋ की मात्राएँ भी देवनागरी के निकट आ गई थीं। वाकाटक लिपि में त और द देवनगरी के अधिक निकट आ गए थे।

ब्राह्मी लिपि की मुख्य रूप से दो शाखाएँ हैं – उत्तरी और दक्षिणी। उत्तरी ब्राह्मी के अंतर्गत गुप्त लिपि (चौथी शताब्दी), कुटिल लिपि (छठी से नौवीं शताब्दी), नागरी लिपि (सातवीं-आठवीं शताब्दी), शारदा लिपि (नौवीं शताब्दी) और बंगला लिपि (दसवीं शताब्दी) आती हैं। कुटिल से नागरी लिपि और नागरी से देवनागरी लिपि(दक्षिण में नंदि नागरी), कैथी, गुजराती, राजस्थानी, महाजनी, असमिया, बंगला और उड़िया (अब ओडिया) लिपियों का विकास हुआ। दक्षिणी ब्राह्मी के अंतर्गत तमिल, तेलुगु, कन्नड, ग्रंथ, कलिंग, मध्य देशी, पश्चिमी और मलयालम लिपियाँ आती हैं। समय के साथ गुप्त, कुटिल, शारदा, कैथी, महाजनी, लंडा आदि लिपियाँ समाप्त हो गईं और देवनागरी लिपि का विकास आरंभ हो गया। दसवीं शताब्दी में नागरी लिपि के कुछ वर्णों पर शिरोरेखाएँ लगाई जाने लगीं और बारहवीं शताब्दी तक इसका रूप वर्तमान देवनागरी जैसा हो गया।

ब्राह्मी से गुप्त व कुटिल लिपियों का तथा बाद में दसवीं से बीसवीं शताब्दी तक देवनागरी लिपि का क्रमिक विकास निम्न प्रकार हुआ। इस विकास से अनके मध्य परस्पर संबंध की जानकारी मिलती है:

टिप्पणी - उपर्युक्त तालिका में देवनागरी के केवल उन्हीं वर्णों के रूप परिवर्तन दर्शाए गए हैं, जो दसवी शताब्दी से चले आ रहे हैं।

ब्राह्मी के देवनागरी लिपि में परिणत होने के काल के व्यतिरेकी विश्लेषण से ज्ञात होता है कि ब्राह्मी में अ के प्र रूप का अस्तित्व दसवीं शताब्दी में ही बीसवीं शताब्दी के प्र जैसा होना शुरू हो गया था। चौदहवीं शताब्दी में यह बीसवीं शताब्दी के प्र जैसा ही हो गया था। यह भी ज्ञात होता है कि ब्राह्मी से विकसित होकर 'द' 10वीं सदी में; उ, ऊ, ए, ऐ, क, ख, ग, ज, ट, ढ, त, न, प, फ, म, ल, श, ष और स 11वीं सदी में; प्रा, ऊ, छ, ञ, ठ, ड, य, र, व और ह 12वीं सदी में; इ, ई और घ 13वीं सदी में; ध 14वीं सदी में; ब, भ और ॐ प्रौ 15वीं सदी में तथा च और थ 16वीं सदी में ही बीसवीं सदी जैसे हो गए थे। ब्राह्मी के पूर्व कुछ कैरेक्टरों का ही प्रयोग देवनागरी में आज भी होता है और कुछ शासकीय प्रयासों के फलस्वरूप हुए परिवर्तनों को छोड़कर उनके रूप वैसे के वैसे बने हुए हैं वर्ष 1972 अर्थात् बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने शासकीय प्रयासों से प्र, प्रा, प्रो, प्रौ, रव, ऋ, रा, ध्र, भ, की जगह क्रमश: अ, आ, ओ, औ, ख, झ, ण, ध, भ रूप निर्धारित कर दिए, हालांकि इनमें से ख, ध और भ का प्रयोग पुराने रूपों में भी हो रहा है। निदेशालय ने इन बदलावों के अतिरिक्त देवनागरी लिपि में अन्य लिपियों के कुछ वर्ण भी शामिल कर लिए और देवनागरी लिपि के लेखिमों के संबंध में कुछ अन्य नियम भी निर्धारित किए, जिनका समग्र विवरण निदेशालय द्वारा प्रकाशित पुस्तिका "देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण" में दिया गया है। ब्राह्मी की स्वर और व्यंजनों के वर्गीकरण की व्यवस्था भी अपने परिवर्तित रूप में देवनागरी और अन्य भारतीय लिपियों में समाहित हो गई, जिस कारण सभी भारतीय लिपियों की ध्वानिक प्रकृति परस्पर मिलते-जुलते रूप में विकसित हुई।

अब देवनागरी के प्रयोग की बात करते हैं। देवनागरी का सर्वप्रथम प्रयोग सातवीं-आठवीं शताब्दी में गुजरात नरेश जय भट्ट के एक शिलालेख में मिलता है। इसके उपरांत राष्ट्रकूट राजाओं द्वारा आठवीं शताब्दी में तथा बड़ौदा के ध्रुवराज द्वारा नौंवी शताब्दी में इसका व्यवहार मिलता है1 ये प्रमाण देवनागरी के दक्षिण भारत में प्रयोग की प्राचीनता सूचित करते हैं। इस युग की नागरी लिपि अत्यंत अलंकृत थी और सम्राट का हस्ताक्षर तो प्राचीन नागरी का उत्कृष्ट नमूना है। इस प्रकार देवनागरी का प्रयोग उत्तर और दक्षिण दोनों दिशाओं में सातवीं शताब्दी में आरंभ हुआ। दसवीं शताब्दी से यह पंजाब से बंगाल और नेपाल से केरल तथा श्रीलंका तक व्यापक प्रयोग में आने लगी थी। ग्यारहवीं शताब्दी से देवनागरी का रूप पूर्ण और स्थिर होने लगा और इसकी लोकप्रियता बढ़ती चली गई। यहाँ तक कि मुगल आक्रमणकारी गजनवी ने अपने सिक्कों पर इसका प्रयोग किया। उसने सन् 1027-28 में लाहौर की टकसाल में जो सिक्के बनवाए थे, उनके एक ओर देवनागरी लिपि में संस्कृत भाषा में 'प्रत्यक्तमेक मुहम्मद अवार नृपति महमूद' तथा किनारे पर 'अव्याक्ती उनमें अये टंकं हत महमूदपुर संवती 418' लिखा है। ताड़-पत्रों पर देवनागरी में लिखे इस काल के अनेक ग्रंथ गुजरात, राजस्थान तथा महाराष्ट्र से प्राप्त हुए हैं।

मुगल काल में यद्यपि देवनागरी का राजकीय प्रश्रय छिन गया था, फिर भी जन-जीवन में देवनागरी प्रचलित रही और विकसित होती रही। इसमें अवधी, राजस्थानी, ब्रजभाषा, मैथिली आदि में विपुल साहित्य भी लिखा गया। इसके अतिरिक्त शेरशाह ने भी इसका अपने सिक्कों पर प्रयोग किया। उसके सिक्कों पर देवनागरी में 'श्री शेरशाह' और 'ओम्' लिखे होते थे। अंग्रेजी शासनकाल में भी ईसाई मिशनरियों ने भी अपने धर्म के प्रचार के लिए देवनागरी सीखी, जिस कारण इसे सरकारी संरक्षण भी प्राप्त हो गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान सभा ने हिंदी को राष्ट्रभाषा और देवनागरी को राष्ट्रलिपि स्वीकार किया।

इस प्रकार देवनागरी के उदभव और विकास की कहानी एक हजार वर्षों से अधिक पुरानी है। ब्राह्मी से इसका उदभव आरंभ होने के बाद इसने अशोक काल, कुषाण काल, वाकाटक काल, गुप्त काल में समय-समय पर कई बार अपने रूप बदले और अंतत: बारहवीं सदी के आस-पास इसके अधिकांश वर्णों का रूप स्थिर हो गया। गुप्त काल के बाद भी इसने फारसी, अरबी, रोमन लिपियों से संघर्ष किया। कभी यह अपने संघष्र में पराजित होती दिखाई दी तो कभी इसके उत्थान का काल भी नजर आने लगा। अंतत: स्वतंत्र भारत की राजभाषा हिंदी की राजकीय लिपि के रूप में स्वीकृति पाकर देवनागरी ने अनंत काल तक का सफर सुनिश्चित कर लिया।

संदर्भ-सूची

1. राष्ट्र संगठन में देवनागरी का योगदान, भगवानदीन मिश्र, भाषा, जून 1963, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली।
2. भातरीय पुरालिपि शास्त्र (1966), जॉर्ज ब्यूलर, बनारसी दास प्रकाशन, दिल्ली।
3. नागरी लिपि और हिंदी वर्तनी (1973), डॉ. चौधरी, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना।
4. विश्व की मूल लिपि ब्राह्मी (1975), प्रेम सागर जैन, इंदौर।
5. देवनागरी लिपि : वैज्ञानिकता और उपयोगिता, डॉ. श्रीधर मिश्र, राजभाषा भारती, जुलाई-सितंबर, 1986
6. हिंदी भाषा की लिपि संरचना(1993), भोलानाथ तिवारी, साहित्य सहकार, दिल्ली।
7. भारतीय प्राचीन लिपिमाला (1993), गौरीशंकर हीराचंद ओझा, मुंशी राम मनोहर लाल प्रा. लि., दिल्ली।
8. देवनागरी लिपि और राजभाषा हिंदी (2006), रमेश चन्द्र, कल्याणी शिक्षा परिषद्, दिल्ली।
9. देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण (2019), केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली।
10. नागरी लिपि की वैज्ञानिकता, संपादक डॉ. मलिक मुहम्मद और डॉ. गंगा प्रसाद विमल, नागरी लिपि परिषद्, नई दिल्ली